* श्री *

सन्मति-वाणी

[श्रमण भगवान महावीर के वचनामृत]



सम्पादक —
स्वर्गीय स्वामीजी श्री जोरावरमलजी महाराज के
सुशिष्य पण्डित मुनिश्री मिश्रीमलजी
महाराज (मधुकर)



१९५३

त प्रिन्टिग प्रेस,
र (अजमेर)

प्रथमावृत्ति	१०००
मूल्य	।।।) बारह आने
वीर सं०	२४७८
स०	२०१०

मुद्रक —
श्री जालमसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध से
श्री गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस,
ब्यावर में मुद्रित।

समर्पण



सन्मति के
स न्दे श-वा ह कों
को



सन्मति-वाणी

विषयानुक्रमणिका





सन्मति-वाणी—



श्री माणकचन्दजी बनावनरा के सुपुत्र
श्री हंसराजजी बनाला
मूलनिवास—'मेनण'
वर्तमाननिवास—बागलकोट (जिला बीजापुर)

जीवन-परिचय



श्रीमान् सेठ माणकचन्दजी सोमणा (नागौर) मारवाड़ के रहने वाले हैं। आपके दादाजी श्रीयुत सूयचन्दजी रतनचदजी सोमणा से बागलकोट (बिजापुर) व्यापारार्थ गये थे। श्रीमान् *माणकचन्दजी के पिताजी श्री जडावमलजी ने बागलकोट में* बहुत अच्छी ख्याति प्राप्त की। इस समय आपकी फर्म का नाम भी जडावमल माणकचन्द के नाम से चल रहा है।

श्रीयुत वेतालाजी के सन्तानों में एक पुत्र श्री हंसराजजी और तीन पुत्रियाँ—सजनबाई, चचलबाई और शातिबाई हैं।

श्रीमान् वेतालाजी धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखने वाले श्रावक हैं। साधु सतों के प्रति भी आपकी पूर्ण श्रद्धा है। व्यापार आदि का अधिक काम होने पर भी आप वर्ष में एक बार साधु सतों के दर्शनार्थ मारवाड़ आदि देशों में अवश्य जाते हैं।

श्रीयुत वेतालाजी ने '*सन्मति-वाणी*' के प्रकाशन में जो २२५) रुपयों की सहायता दी है, एतदर्थ आपको धन्यवाद। हम आप से आशा करते हैं कि भविष्य में भी आप इसी प्रकार से साहित्य सेवा करते रहेंगे।

—प्रकाशक

[illegible]

दो शब्द:—

जब मैं शान्तिनिकेतन में विद्याभ्यास कर रहा था तब शास्त्र-स्वाध्याय के साथ साथ प्राकृत-भाषा का भी क्रमिक अवबोध हो सके ऐसी 'प्राकृत-पाठावली' प्रकाशित करने की हृदयगत भावना थी। 'महावीर-वाणी' जो सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली तथा भारत जैन महामण्डल, वर्धा द्वारा प्रकाशित हुई है—के प्रकाशन से इस भावना की आंशिक ही पूर्ति हो सकी है। क्योंकि उसमें प्राकृत-भाषा का व्याकरण, तुलनात्मक टिप्पण तथा अन्य उपयोगी परिशिष्ठ दिये नहीं जा सके हैं। प्राकृत भाषा के बोध के साथ भगवान् महावीर की अमर वाणी जनता सरलतापूर्वक समझ सके इस दृष्टि से यह 'सन्मति-वाणी' का संकलन-संपादन किया गया है। प्राकृत-भाषा के अभ्यासी तथा जिज्ञासु छात्रों के लिए यह संकलन विशेषोपयोगी सिद्ध होगा ऐसी आशा है। सन्मति-वाणी के बाद महावीर-वाणी तत्पश्चात् धर्मसंवाद, धर्मकथाएँ और चरितावली प्राकृत में प्रकाशित करने की भावना है।

प० मुनिश्री मिश्रीलालजी महाराज सा० (मधुकर) ने अति परिश्रम के साथ 'सन्मति-वाणी' का संपादन करके जनता का बहुत ही उपकार किया है। 'प्राकृत पाठावली' के प्रकाशन का स्वप्न सिद्ध हो यही अन्तरेच्छा है।

विनीत—

महावीर जयन्ती
२४७६ } शान्तिलाल वनमाली सेठ

अपनी बात:—

प्रस्तुत पुस्तक का नाम "सन्मति-वाणी" है। 'सन्मति' भगवान् महावीर का नाम है। इसमें भगवान् महावीर की वाणी का सकलन किया गया है, इसलिए इसका 'सन्मति-वाणी' यह नामकरण सरकार कभी अनुपयुक्त तो न होगा?

भगवान् महावीर वीतराग थे, सर्वज्ञ थे अहिंसा के अवतार थे और सत्य के सन्देशक थे।

भगवान् के उपदेश बड़ सरल, सरस, सुमधुर, सस्कृति के सयोजक और विश्व प्रेम की भावना को जागृत करने वाले होते थे।

भगवान् के उपदेशों का एक मात्र लक्ष्य था—जन जन के हृदय में विश्व प्रेम की भावना को जागृत करना। भगवान् ने अपने अन्तिम धर्मप्रवचन म भी कहा, जो मुमुत्तु है उसे "*अप्पाए सच्चमसिज्जा मेत्ति भूएसु कप्पए।*" अर्थात् सत्य की खोज करनी चाहिए और विश्व क साथ मैत्री का भाव रखना चाहिए।

अहिंसा और सत्य को अपनाकर ही प्रत्येक प्राणी अपने हृदय में विश्व प्रेम की भावना को जागृत कर सकता है।

विश्व प्रेम की भावना एक ऐसा साधन है, जिससे जीवन में शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जाता है।

ससार का प्रत्येक प्राणी शान्ति का अभिलाषी है, परन्तु उसे यह पता नहीं है कि शान्ति का स्रोत कहाँ बहता है? वह यह नहीं जानता कि शान्ति को प्राप्त करने का असली और अमोघ उपाय क्या है?

आज संसार में विश्वशान्ति के लिए बड़ी बड़ी योजनाएं बनाई जाती हैं। उसके लिए बड़े बड़े सम्मेलन संयोजित किए जाते हैं। परन्तु वह विश्वशान्ति कहाँ ? जिधर देखो उधर प्रलय विस्फोट, प्रणाश और हाहाकार ही हाहाकार। यहाँ यह प्रश्न होता है, ऐसा क्यों ? इसका उत्तर बिलकुल सीधा है। आज की दुनिया ने विश्व शान्ति के असली उपाय को नहीं अपनाया है। विश्वशान्ति का असली साधन है, अहिंसा और उससे पनपने वाली विश्व प्रेम की भावना।

यह एक निश्चित सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विश्व प्रेम की भावना के आने से ही विश्व भर में शान्ति की स्थापना हो सकती है।

व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। विश्वशान्ति की स्थापना के लिए विशुद्ध समाज और विशुद्ध राष्ट्र की खास आवश्यकता होती है। विशुद्ध समाज और विशुद्ध राष्ट्र की आधारशिला है व्यक्ति की विशुद्ध भावना। जिस समाज के व्यक्तियों ने प्रतिशोध, हिंसा और पशुबल का त्याग कर अहिंसा के आधार पर अपने जीवन का निर्माण किया है, वस्तुतः वही विशुद्ध समाज है और उससे बनने वाला राष्ट्र भी विशुद्ध राष्ट्र।

समाज और राष्ट्र की संस्कृति को समुज्ज्वल बनाने के लिए व्यक्ति के जीवन को सुसंस्कृत बनाना सदा समयापेक्षित रहता है। यह मानी हुई बात है कि जब तक व्यक्ति की भावना ऊँची नहीं उठती, तब तक समाज और राष्ट्र का कभी उत्थान नहीं हो सकता। इसलिए विशुद्ध समाज और विशुद्ध राष्ट्र का निर्माण करने के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को उच्चतम बनाना अत्यन्त आवश्यक है।

भगवान् महावीर ने यही किया। पहले स्वयं उन्होंने अपने जीवन को ऊँचा उठाया। फिर वे धर्म के एक महान् ज्योतिर्धर नेता के रूप में संसार के सामने आए। उन्होंने मानव समाज को शांति का वास्तविक मार्ग बताया।

भगवान् ने मानव समाज को जो उपदेश दिया उसका सार यह था कि 'प्रत्येक मनुष्य का चरम लक्ष्य होना चाहिए—मोक्ष। और मोक्ष के लिए चाहिए हृदय में विश्व प्रेम। विश्व-प्रेम की भावना को जागृत करने के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहवृत्ति, क्षमा, सरलता, विनय, तप, त्याग आदि धर्म के प्रधान अंगों को अपनाना चाहिए।" आदि आदि।

भगवान् के उपदेश उस समय जितने आवश्यक थे, आज भी उनके उपदेशों की उतनी ही आवश्यकता है।

आज का मानव—यह मानव जो चोर बाजारी, काला बाजार और भ्रष्टाचार दिन प्रतिदिन बढ़ा रहा है, और इससे संसार में जो अशान्ति की ज्वाला प्रज्वलित हो रही है, उसका प्रशमन भगवान् महावीर के उन्हीं उपदेशों से ही किया जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक, भगवान् महावीर के उन्हीं उपदेशों का एक छोटा सा संकलन है। आज के मानव जगत् ने ऐसे संकलनों को अधिक पसन्द किया है।

इस संकलन में सूक्तियों के संग्रह की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। आगम के गद्य व पद्य विभाग में संचित सूक्तियाँ अपनी आवश्यकता के अनुसार इसमें संगृहीत की गई हैं। जिस पद्य का पूरा भाग सूक्ति रूप में था, उसे उस रूप में और जिसका आधा या एक अंश सूक्ति रूप में था उसका वही अंश यहाँ उद्धृत किया गया है।

यहाँ जो पद्यों का अनुवाद रक्खा गया है, वह श्रीयुत पण्डित बेचरदासजी दोशी द्वारा सम्पादित 'महावीर वाणी' से लिया गया है। जहाँ उचित समझा गया है वहाँ कुछ-बहुत कम परिवर्तन भी किया गया है। जो पद्य 'महावीर वाणी' में नहीं थे, उनका और गद्य विभाग का अनुवाद अपनी ओर से किया गया है।

वस्तुत यह संकलन मेरा नहीं है। यह है गुरुकुल प्रेस ब्यावर के मैनेजर श्रीयुत शांतिलाल वनमाली शेठ का। उन्होंने मुझे इसे सम्पादित करने के लिए दिया और मैंने अपनी योग्यता के अनुसार इसका सम्पादन किया। मेरी साहित्यिक प्रवृत्तियों में मुझे पूज्य श्री गुरुदेव श्री हजारीमलजी महाराज साहब से प्रेरणाबल और आशीर्वाद मिलता ही रहता है। जिनके उपकार से उऋण होना मेरे लिए अति कठिन है।

'सन्मति-वाणी' के सम्पादन में मुझे श्रीयुत श्रद्धेय कवि वर उपाध्यायजी श्री अमरचन्द्रजी महाराज के सुशिष्य पण्डित मुनि श्री विजय मुनि जी का और ब्यावर गुरुकुल के प्रधान अध्यापक श्रीयुत पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल का पूरा सहयोग मिला है, इसलिए इन दोनों महानुभावों का मैं बहुत आभारी हूँ।

अन्त में छद्मस्थ होने के नाते इस सम्पादन में अनेक त्रुटियों का हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। पाठकों से इसकी क्षमायाचना करता हूँ।

जयमल्ल जैन पौषधशाला भवन
नागौर (मारवाड़)
ता० २-३-१६५२

मधुकर मुनि

[१]

मगल सुत्त

[मगल-सूत्र]

नमोक्कारो

नमो अरिहताण ।
नमो सिद्धाण ।
नमो आयरियाण ।
नमो उवज्झायाण ।
नमो लोए सव्वसाहूण ।
एसो पच नमुक्कारो, सव्व पाव-पणासणो ।
मगलाण च सव्वेसिं, पढम हवइ मगल ॥
—पच प्रति० सूत्र १]

मगल

अरिहता मगल । सिद्धा मगल ।
साहू मगल । केवलि-पन्नत्तो धम्मो मगल ।

लोगुत्तमा

अरिहता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा ।
साहू लोगुत्तमा । केवलि-पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

सरण

अरिहते सरण पवज्जामि ।
सिद्धे सरण पवज्जामि ।
साहू सरण पवज्जामि ।
केवलि पन्नत्त धम्म सरण पवज्जामि ।

नमस्कार

नमस्कार हो अरिहंतों को,
नमस्कार हो सिद्धों को
नमस्कार हो आचार्यों को,
नमस्कार हो उपाध्यायों को,
नमस्कार हो लोक के सर्व साधुओं को,
यह पंच नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाला है
और सब मंगलों में प्रथम (श्रेष्ठ) मंगल है।

मंगल

अर्हन्त मङ्गल हैं,
सिद्ध मंगल हैं,
साधु मंगल हैं,
केवली भाषित धर्म मङ्गल है।

लोकोत्तम

अर्हन्त लोक में उत्तम हैं,
सिद्ध लोक में उत्तम हैं,
साधु लोक में उत्तम हैं,
केवलि भाषित धर्म लोक में उत्तम है।

शरण

अर्हन्तों की शरण स्वीकार करता हूँ,
सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूँ,
साधुओं की शरण स्वीकार करता हूँ,
केवली-भाषित धर्म की शरण स्वीकार करता हूँ।

नमोक्कारो

नमो अरिहंताणं ।
नमो सिद्धाणं ।
नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाणं ।
नमो लोए सव्वसाहूणं ।

एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पाव-पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

—पंच प्रति० सूत्र १]

मंगल

अरिहंता मंगलं । सिद्धा मंगलं ।
साहू मंगलं । केवलि-पन्नत्तो धम्मो मंगलं ।

लोगुत्तमा

अरिहंता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा ।
साहू लोगुत्तमा । केवलि-पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

सरणं

अरिहंते सरणं पवज्जामि ।
सिद्धे सरणं पवज्जामि ।
साहू सरणं पवज्जामि ।
केवलि पन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।

नमस्कार

नमस्कार हो अरिहंतों को,
नमस्कार हो सिद्धों को,
नमस्कार हो आचार्यों को,
नमस्कार हो उपाध्यायों को,
नमस्कार हो लोक के सर्व साधुओं को,
यह पंच नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाला है
और सब मंगलों में प्रथम (श्रेष्ठ) मंगल है।

मंगल

अर्हन्त मंगल है,
सिद्ध मंगल हैं,
साधु मंगल हैं,
केवली भाषित धर्म मंगल है।

लोकोत्तम

अर्हन्त लोक में उत्तम है,
सिद्ध लोक में उत्तम हैं,
साधु लोक में उत्तम हैं,
केवलि भाषित धर्म लोक में उत्तम है।

शरण

अर्हन्तों की शरण स्वीकार करता हूँ,
सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूँ,
साधुओं की शरण स्वीकार करता हूँ,
केवली भाषित धर्म की शरण स्वीकार करता हूँ।



[२]

धम्म-सुत्त

[धर्म-सूत्र]

(१)

धम्मो मगल–मुक्किट्ठ,
अहिंसा सजमो तवो ।
देवा वि त नमसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।

[दश० अ १ गा १]

(२)

धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।

[उत्त अ ३ गा १२]

(३)

एगो हु धम्मो नरदेव ! ताण

[उत्त अ १४ गा ४०]

(४)

धम्म चर सुदुच्चर

[उत्त अ १८ गा ३३]

(५)

जा जा वच्चइ रयणी,
न सा पडिनियत्तई ।
धम्म च कुणमाणस्स,
सफला जन्ति राइओ ॥

[उत्त अ १४ गा २५]

(१)

धर्म श्रेष्ठ मंगल है और वह है—अहिंसा, संयम और तप।
जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है,
उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

(२)

धर्म अपने आधारभूत शुद्ध पात्र में ही ठहरता है, अर्थात्
सरल आत्मा ही धर्म का पालन कर सकता है।

(३)

हे राजन्!
एक मात्र धर्म ही संसार में शरण देने वाला है।

(४)

दुश्चर धर्म का आचरण कर।

(५)

जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं,
वे फिर कभी वापस नहीं आते, जो मनुष्य धर्म करता है,
उसके वे रात और दिन सफल हो जाते हैं।

(६)

जरा जाव न पीडेइ,
वाही जाव न वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायति,
ताव धम्म समायरे ॥

[दश अ ८ गा ३६]

(७)

चइज्ज देह, न हु धम्म-सासणं ।

[दश म चू गा १७]

(८)

सयय मूढे धम्म नाभिजाणइ ।

[आचा प्र श्रु १ अ २ उ ४]

(९)

सव्व-धम्म-परिभट्ठो
स पच्छा परितप्पई,

[दश म चूलि गा १]

(६)

जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियाँ नहीं बढ़तीं, जब तक इन्द्रियाँ अशक्त नहीं होतीं, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए, बाद में कुछ नहीं होने का।

(७)

नाशवान् शरीर का परित्याग कर के भी उत्तम धर्म का पालन करना चाहिए।

(८)

मूढ मनुष्य धर्म के मर्म को नहीं समझ सकता।

(९)

भोगाभिलाषी मनुष्य धर्म पथ से भ्रष्ट हो बाद में पश्चात्ताप करता है।



[३]

विणय-सुत्त

[विनयसूत्र]

(१)

धम्मस्स विणओ मूलं,

[दश० अ० ९ उ० २ गा० २]

(२)

विणए ठविज्ज अप्पाणं
इच्छन्तो हिय-मप्पणो,

[उत्त० अ० १ गा० ६]

(३)

विवत्ती अविणीयस्स,
संपत्ती विणीयस्स य।
जस्सेयं दुहओ नायं,
सिक्खं से अभिगच्छइ॥

[दश० अ० ९ उ० २ गा० २१]

(४)

अह पंचहिं ठाणेहिं,
जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं,
रोगेणाऽलस्सएण य॥

[उत्त० अ० ११ गा० ३]

(१)

धर्म का मूल आधार विनय अर्थात् नम्रता है ।

(२)

अपनी आत्मा का हित चाहने वाले को
विनय धर्म में स्थिर रहना चाहिए ।

(३)

'अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति'
ये दो बातें जिसने जान ली है, वही शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

(४)

इन पाँच कारणों से मनुष्य सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता–
अभिमान से,
क्रोध से,
प्रमाद से,
कुष्ठ आदि रोग से
और आलस्य से ।

(५-६)

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीलि त्ति वुच्चइ ।
अहस्सिरे सया दंते, न य मम्ममुदाहरे ॥
नासीले न विसीले, न सया अइलोलुए ।
अकोहणे सच्चरए, सीक्खासिलि त्ति वुच्चइ ॥

[उत्त अ ११ गा ४ ५]

(७)

आणा निद्देसकरे, गुरूणा मुववायकारए ।
इंगियागारसंपन्ने, से विणीए त्ति वुच्चइ ॥

[उत्त अ १ गा २]

(८)

न याऽवि मोक्खो गुरु-हीलणाए,

[दश अ ६ उ १ गा ७]

(९)

जस्संतिए धम्मपयाइ सिक्खे,
तस्सन्तिए वेणइय पउंजे ।
सक्कारए सिरसा पंजलीओ,
कायग्गिरा भो ! मणसा य निच्चं ।

[दश अ ६ उ १ गा १२]

(५-६)

इन आठ कारणों से मनुष्य शिक्षा-शील कहलाता है —
हर समय हँसने वाला न हो,
सतत इन्द्रिय निग्रही हो,
दूसरों के मर्म को भेदन करने वाले
वचन न बोलता हो
सुशील हो,
दुराचारी न हो,
रस-लोलुप न हो,
सत्य में रत हो, क्रोधी न हो, शान्त हो।

(७)

जो गुरु की आज्ञा पालता है, उनके पास रहता है, उनके इंगितों तथा आकारों को जानता है वही शिष्य विनीत कहलाता है।

(८)

गुरु की अवज्ञा करने वाले को मोक्ष कभी नहीं मिल सकता।

(९)

शिष्य का कर्त्तव्य है कि—
वह जिस गुरु से धर्म प्रवचन सीखे,
उसकी निरन्तर विनय भक्ति करे।
मस्तक पर अञ्जलि धारण कर गुरु के
प्रति सम्मान प्रदर्शित करे।
जिस तरह भी हो सके उसी तरह
मन से, वचन से और शरीर से
हमेशा गुरु की सेवा करे।



[४]

ति-रयण-सुत्त

[त्रिरत्न सूत्र]

नाण

(१)

पढमं नाणं तओ दया ।

[दश० अ ४ गा १०]

(२)

नाणेण जाणइ भावे ।

[उत्त० अ २८ गा ३५]

(३)

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिणिबोहियं ।
ओहि नाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं ।

[उत्त० अ २८ गा ४]

(४)

नाणेण विणा न हुंति चरण गुणा ।

[उत्त० अ २८ गा ३०]

(५)

जहा सूई ससुत्ता पडिया वि ण विणस्सइ ।
तहा जीवो ससुत्तो संसारे ण विणस्सइ ।

[उत्त० अ २९ सू ५९]

ज्ञान

(१)

प्रथम ज्ञान है, पीछे दया अर्थात् क्रिया।

(२)

मुमुक्षु आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है।

(३)

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्याय और केवल इस भाँति ज्ञान पाँच प्रकार का है।

(४)

ज्ञान के बिना जीवन में चारित्र के गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती।

(५)

जैसे सूत्र (डोरा) से युक्त सुई गिर जाने पर भी गुमती नहीं है, उसी प्रकार सूत्र (श्रुत ज्ञान) से युक्त जीव भी संसार में दुःख नहीं पाता।

नाण

(१)

पढमं नाणं तओ दया ।
[दश० अ ४ गा १०]

(२)

नाणेण जाणइ भावे ।
[उत्त० अ २८ गा ३५]

(३)

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिणिबोहियं ।
ओहि नाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं ।
[उत्त० अ २८ गा ४]

(४)

नाणेण विणा न हुंति चरण गुणा ।
[उत्त० अ २८ गा ३०]

(५)

जहा सुई ससुत्ता पडिया वि ण विणस्सइ ।
तहा जीवो ससुत्तो संसारे ण विणस्सइ ।
[उत्त० अ २९ सू ५९]

ज्ञान

(१)

प्रथम ज्ञान है, पीछे दया अर्थात् क्रिया।

(२)

मुमुक्षु आत्मा ज्ञान से जीवादिक
पदार्थों को जानता है।

(३)

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्याय और केवल
इस भाँति ज्ञान पाँच प्रकार का है।

(४)

ज्ञान के बिना जीवन में चारित्र के
गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती।

(५)

जैसे सूत्र (डोरा) से युक्त सुई गिर जाने पर
भी गुमती नहीं है, उसी प्रकार सूत्र (श्रुत ज्ञान)
से युक्त जीव भी संसार में दुःख नहीं पाता।

(६)

अट्ठ-जुत्ताणि सिक्खिज्जा,
निरट्ठाणि उ वज्जए।
[उत्त अ १ गा ८]

(७)

जावन्तोऽविज्जा पुरिसा,
सव्वे ते दुक्खसंभवा।
[उत्त अ० ६ गा० १]

(८)

जे एगं जाणइ,
से सव्वं जाणइ।
[आचा० प्र श्रु अ ३ उ ४]

दंसण

(१)

जीवाऽजीवा य बन्धो य, पुण्णं पावाऽऽसवो तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्ति ए तहिया नव।

(२)

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं।
भावेण सद्दहन्तस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं।
[उत्त अ १८ गा १४ १५

(६)

अर्थयुक्त वाक्यों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए,
निरर्थक वाक्यों को छोड़ देना चाहिए।

(७)

संसार में जितने भी अज्ञान पुरुष हैं,
वे सब दुःख भोगने वाले हैं।

(८)

जो एक (आत्मा) को जान लेता है,
वह सब कुछ जान सकता है।

दर्शन

(१)

जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप
आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष
ये नव सत्य तत्त्व हैं।

(२)

जीवादिक सत्य पदार्थों के अस्तित्व के
विषय में सद्गुरु के उपदेश से, अथवा
स्वयं ही अपने भाव से श्रद्धा करना,
सम्यक्त्व (दर्शन) कहा गया है।

(३)

दसरोण सद्दहे ।

[उत्त अ २८ गा ३५]

(४)

सद्धा परम-दुल्लहा ।

[उत्त अ ३ गा ९]

(५)

सम्मत्तन्सी न करेइ पाव ।

[आचा प्र श्रु अ ३ उ २]

(६)

संवुज्झह, किं न वुज्झह ।
सबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।

[सूय श्रु १ अ २ उ १ गा १]

चरित्त

(१)[1]

चरित्तेण निगिरहाइ ।

[उत्त अ २८ गा ३५]

(२)

मुमुक्षु आत्मा दर्शन से जीवादिक
पदार्थों पर श्रद्धान करता है।

(३)

जीवन में श्रद्धा प्राप्त होना अत्यन्त
कठिन है। श्रद्धावान् कभी
पाप नहीं करता।

(४)

समझो, इतना भी क्यों नहीं समझते?
परलोक में सम्यग् बोधि का मिलना
बड़ा कठिन है।

चारित्र

(१)

मुमुक्षु साधक चारित्र्य से भोग-वासनाओं का
निग्रह करता है।

(२)

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो ।

[उत्त अ २८ गा ३०]

(३)

अहिंस-सच्च च अतेणग च,
तत्तो य बभ अपरिग्गह च ।
पडिवज्जिया पच महव्वयाणि,
चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विदू ॥

[उत्त अ २१ गा १२]



(२)

जो चारित्र्य के गुण से रहित है,
उसे कभी मोक्ष नहीं मिल सकता।

(३)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतों का स्वीकार करके बुद्धिमान् मनुष्य जिन द्वारा उपदिष्ट धर्म का आचरण करे।



(२)

अणुसिट्ठ गरिमं ठाणो ।

[उत्त० अ० १६ गा० १०]

(३)

पडिम-सरूव च मनोरम च,
तो य धम्म सम्मणिए च ।
पडिरूविया पव सद्भावानि,
परिजय भाव सिमहणिय सिद्धि ॥

[उत्त० अ० ११ गा० ११]

(२)

जो चारित्र के गुण से रहित है,
उसे कभी मोक्ष नहीं मिल सकता।

(३)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और
अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतों को
स्वीकार करके बुद्धिमान् मनुष्य जिन द्वारा
उपदेश किए धर्म का आचरण करे।



[५]

तव-सुत्त

[तपः सूत्र]

(१)

माणं परिवज्जए।

[उत्त० अ० १८ गा० ११]

(२)

नइ लगाए चरिय च दुच्चरं।

[उत्त० अ० १६ गा० १०]

(३)

तवेण धारा अणुसट्ट।

[उत्त० अ० १६ गा० १०]

(४)

भव कोडि-संचियं कम्मं,
तवसा निज्जरिज्जइ॥

[उत्त० अ० ३० गा० ६]

(५)

असिधारा-गमणं चेव,
दुक्करं चरिउं तवो।

[उत्त० अ० १६ गा० ३०]

(१)

मुमुक्षु साधक तप से कर्म-मल रहित
होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।

(२)

तपोमूलक चारित्र ही सर्वश्रेष्ठ चारित्र है।

(३)

तपोबल से संचित कर्म खिरते रहते हैं।

(४)

करोड़ों जन्मों का संचित कर्म भी
तप से नष्ट किया जा सकता है।

(५)

तपश्चर्या असिधारा-गमन के समान
अत्यन्त दुष्कर माना गया है।

(६)

से सव्वे भविते गुणा कम्मिदुरक्खणा अणु।
दीहि दरिरो मुणी परक्कमा मरी॥

[उत्त० अ० १० गा० ४८]

(७)

समागम-मग्गो वलिए, निसग्गदंसि समाहियप्पो
कदाचिनओ मन्नीयम, य, धम्मो नवो होइ

(८)

पाणिवह मुसावाय अदत्त मेहुण परिग्गहा विरओ।
राईभोयण विरमणा जओ धम्मज्झाणे उओ॥

[उत्त० अ० ३० गा० २०]

(९)

नाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा।
एयं मग्ग - मणुपत्ता,
जीवा गच्छन्ति सुग्गइं॥

[उत्त० अ० २८ गा० ३]

(६)

तप दो प्रकार का बतलाया है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप छः प्रकार का कहा है, इसी प्रकार आभ्यन्तर तप भी छः ही प्रकार का है।

(७)

अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रसपरित्याग, काय-क्लेश और संलेखना ये बाह्य तप हैं।

(८)

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग—ये आभ्यन्तर तप हैं।

(९)

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—इस चतुष्टय आध्यात्मिक मार्ग को प्राप्त होकर मुमुक्षु जीव मोक्षरूप सद्गति को पाते हैं।



[६]

वय-सुत्त

[व्रतसूत्र]

अहिंसा-सूत्र

(१)

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो॥

[दश० अ० ६ गा० १०]

(२)

एसा भगवई अहिंसा,—
भीयाण व सरणं,
पक्खीण व गमणं,
तिसियाण व सलिलं,
खुहियाणं व असणं,
समुद्दमज्झे व पोत-वहणं,
दुहियाण व ओसहि बलं,
अडविमज्झे व सत्थ गमणं,
एत्तो विसिट्ठतरिया अहिंसा।

[प्रश्न व्या० संवर द्वार १]

(३)

सव्वे पाणा परमाहम्मिया।

[सूत्र अ० ४]

अहिंसा

(१)

भगवान् महावीर ने अठारह धर्म स्थानों में सब से पहला स्थान अहिंसा का बतलाया है। सब जीवों के प्रति संयम पूर्वक व्यवहार रखना अहिंसा है। यह सब सुखों को देने वाली है।

(२)

यह भगवती अहिंसा भय भीतों का शरण है। पक्षियों को जैसे गगन तृषितों को जैसे जल क्षुधितों को जैसे भोजन समुद्र के मध्य में जैसे (यात्रियों को) जलयान रोगियों को जैसे औषध का बल और अटवी में जैसे सार्थवाह का साथ— भगवती अहिंसा का महत्व इससे भी अधिक-बहुत अधिक है।

(३)

सभी प्राणी परम सुख के अभिलाषी हैं।

(४)

[illegible] [illegible] [illegible] ।

[आचा १ श्रु [illegible]]

(५)

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]–

[illegible] [illegible] [illegible] ।

[[illegible]]

(६)

[illegible] [illegible]—

[illegible]

[illegible]

[illegible] ।

[आचा १ श्रु [illegible]]

(७)

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[[illegible] गा १०]

(८)

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible]-समय [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[[illegible] श्रु १ [illegible] ११ गा १०]

(४)

सब जीवों को अपना अपना जीवन प्रिय है।

(५)

सभी जीव जीना चाहते हैं,
मरना कोई नहीं चाहता।

(६)

सब प्राणियों को अपनी आयु प्रिय है,
सब सुख चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।

(७)

संसार में जितने भी त्रस और
स्थावर प्राणी हैं, उन सब को—
क्या जान में, क्या अनजान में—
न खुद मारे और न दूसरा से मरवाये।

(८)

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही
ज्ञानी होने का सार है। मात्र इतना ही
अहिंसा के सिद्धान्त का ज्ञान यथेष्ट है।
और यही अहिंसा का विज्ञान है।

(९)

[illegible] ।

[[illegible]]

(१०)

[illegible] ।

[[illegible]]

मन्त्र त्रय

(१)

[illegible] ।

[[illegible]]

(२)

[illegible] ।

[[illegible]]

(३)

[illegible]–
[illegible] ।

[[illegible]]

(९)

सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान
समझ कर कभी उनकी हिंसा न करे।

(१०)

किसी भी जीव की हिंसा
नहीं करनी चाहिए।

सत्य-व्रत

(१)

सत्य ही भगवान् है।

(२)

सत्य पालन में धीरता रक्खो—अर्थात्
सत्य प्रेमी को धैर्यवान् बनना चाहिए।

(३)

सत्य की आज्ञा में चलने वाला
मेधावी (विद्वान्) पुरुष मृत्यु
को लाँघ जाता है।

(४)

तमेव सच्चं णिस्संकं—
जं जिणेहिं पवेइयं ।

[आचा० १ श्रु० अ० ५ उ० ५]

(५)

सच्चं लोगम्मि सारभूयं—
गंभीरतरं महासमुद्दाओ,
थिरतरं मेरुपव्वयाओ,
सोमतरं चंदमंडलाओ
दित्ततरं सूरमंडलाओ,
विमलतरं सरयनहयलाओ,
सुरहितरं गंधमादणाओ ।

[प्रश्न० संवरद्वार २]

(६)

अप्पणा सच्चमेसेज्जा,
मेत्तिं भूएसु कप्पए ।

[उत्त० अ० ६ गा० २]

(४)

अर्हन्तों ने जो कहा है, वही सत्य है।
इस में जरा भी शंका नहीं है।

(५)

सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है,
वह समुद्र से अधिक गम्भीर है,
मेरु पर्वत से अधिक सुन्दर है,
चन्द्र मण्डल से अधिक सौम्य है,
सूर्य मण्डल से अधिक प्रदीप्त है,
शरत्कालीन गगन तल से अधिक
निर्मल है और गन्धमादन पर्वत
से भी अधिक सुरभित है।

(६)

स्वयं सत्य की खोज करते हुए
प्राणी-मात्र के साथ मैत्री
भाव रखना चाहिए।

(७)

पुरिसा !
सच्चमेव समभिजाणाहि ।

[आया. १ श्रु. ३ अ. ३ उ.]

(८)

मुसं परिहरे भिक्खू ।

[उत्त. अ. १ गा. २४]

(९)

मुसावाओ य लोगम्मि,
सव्वसाहूहिं गरिहिओ ।
अविस्सासो य भूयाणं
तम्हा मोसं विवज्जए ।

[दस. अ. ६ गा. १२]

(१०)

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं,
अप्पणट्ठा परट्ठा वा उभयस्सन्तरेण वा ।

[उत्त. अ. १ गा. २५]

(७)

हे पुरुष !
सत्य को समझ

(८)

साधक को असत्य बोलना
छोड़ देना चाहिए ।

(९)

मृषावाद (असत्य) संसार में
सभी सत्पुरुषों द्वारा गर्हित है ।
मृषावादी सभी के अविश्वास
का भाजन बन जाता है,
इसलिए मृषावाद को सर्वथा
त्याग देना चाहिए ।

(१०)

अपने स्वार्थ के लिए, अथवा दूसरों के
लिए, दोनों में से किसी के भी लिए,
पूछने पर पाप युक्त, निरर्थक एवं
मर्म भेदक वचन नहीं बोलना चाहिए ।

(११)

जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा ।
जा य बुद्धेहिं नाइन्ना, न तं भासिज्ज पन्नवं ॥
[दश० अ० ७ गा० २]

(१२)

अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो ।
सव्वसो तं न भासिज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥
[दश० अ० ८ गा० ४८]

(१३)

तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी ।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥
[दश० अ० ७ गा० ११]

(१४)

तहेव काणं काणेत्ति, पंडगं पंडगे त्ति वा ।
वाहियं वा वि रोगि त्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए ॥
[दश० अ० ७ गा० १]

(११)

जो सत्य होने पर भी अवक्तव्य हो, जो न सत्यमृषा (कुछ सत्य कुछ असत्य अर्थात् मिश्र) हो, जो असत्य हो और जिसे बोलने की तीर्थङ्करों ने आज्ञा न दी हो— ऐसी भाषा बुद्धिमान् साधक कभी न बोले।

(१२)

जिस भाषा के बोलने से दूसरे को अविश्वास पैदा होता हो, अथवा जिस भाषा को सुनकर दूसरा शीघ्र कुपित हो जाता हो—ऐसी अहित करने वाली भाषा कभी नहीं बोलनी चाहिए।

(१३)

जो भाषा कठोर हो, दूसरों को भारी दुःख पहुँचाने वाली हो—वह सत्य ही क्यों न हो—नहीं बोलनी चाहिए। क्योंकि उससे पाप का आस्रव होता है।

(१४)

काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर कहना यद्यपि सत्य है, तथापि ऐसा नहीं कहना चाहिए। (क्योंकि इससे उन व्यक्तियों को दुःख पहुँचता है।)

(१५)

नाऽपुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए ।

[उत्त० अ १ गा १४]

(१६)

अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अंतरा ।
पिट्ठि मंसं न खाइज्जा, माया-मोसं विवज्जए ॥

[दश अ ८ गा ४७]

(१७)

बहुयं मा य आलवे ।

[उत्त अ १ गा १०]

(१८)

भासादोसं परिहरे ।

[उत्त अ १ सू २४]

अतेणग वय

(१)

अदिन्नादाणाओ विरमणं ।

[दश अ ४]

(१५)

साधक को चाहिए कि वह न पूछने पर कुछ भी न बोले और पूछने पर कभी असत्य न बोले।

(१६)

साधक को चाहिए कि वह दो व्यक्ति परस्पर बात करते हों तो उनके बीच में बिना पूछे न बोले पीठ पीछे किसी की निन्दा न करे तथा बोलने में मायाचार एवं असत्य को कभी न स्थान दे।

(१७)

व्यर्थ बकवाद मत करो।

(१८)

साधक को दूषित (सदिग्ध एवं सावद्य आदि) भाषा का त्याग कर देना चाहिए।

अस्तेय-व्रत

(१)

अदत्तादान अर्थात् चोरी से दूर रहना।

(२)

लोभाविले आययई अदत्तं।

[उत्त अ ३२ गा २९]

(३)

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं जइ वा बहुं।
दंतसोहणमित्तं पि, उग्गहं से अजाइया॥

(४)

तं अप्पणा न गिण्हन्ति, नो वि अन्नं गिण्हावए।
अन्नं वा गिण्हमाणं पि, नाणुजाणंति संजया॥

[दश अ ६ गा १४-१५]

(५)

दंतसोहणमाइस्स,
अदत्तस्स विवज्जणं।
अणवज्जेसणिज्जस्स,
गिण्हणा अवि दुक्करं॥

[उत्त अ १९ गा २७]

(२)

लोभी मनुष्य ही अदत्त (बिना दिए)
को ग्रहण करता है।

(३-४)

सचेतन पदार्थ हो या अचेतन, अल्प पदार्थ हो या बहुत और तो क्या दाँत कुरेदने की सींक भी जिस गृहस्थ के अधिकार में हो उसकी आज्ञा लिये बिना पूर्ण संयमी साधक न स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरों को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करते हैं और न ग्रहण करने वालों का अनुमोदन ही करते हैं।

(५)

दाँत कुरेदने की सींक आदि तुच्छ वस्तुएँ भी बिना दिये चोरी से न लेना, (बड़ी चीजों की चोरी से लेने की तो बात ही क्या ?) निर्दोष एवं एषणीय भोजन-पान भी दाता के यहाँ से दिया हुआ, यह बड़ी दुष्कर बात है।

बंभचेर-व्रय

(१)

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं ।

[सूत्र १ श्रु अ ६ व १६]

(२)

बंभचेरं—

उत्तम तव-नियम नाण दंसण—

चरित्त-सम्मत्त विणय-मूलं ॥

[प्रश्न १ श्रु संवर द्वार ४]

(३)

विरई अबंभचेरस्स, काम-भोगरसन्नुणा ।

उग्गं महव्वय बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं ॥

[उत्त अ १९ गा २८]

(४)

अबंभचरियं घोरं, पमायं दुरहिट्ठियं ।

नायरंति मुणी लोए, भेयाययण-वज्जिणो ॥

[दश अ ६ गा १६

(५)

मूलमेयमहम्मस्स, महादोस समुस्सियं ।

तम्हा मेहुण-संसग्गं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥

[दश अ ६ गा १७

ब्रह्मचर्य व्रत

(१)

ब्रह्मचर्य सभी तपों में उत्तम तप है।

(२)

तप और नियम, ज्ञान, दर्शन और चारित्र तथा सम्यक्त्व और विनय—इन सबका मूल ब्रह्मचर्य ही है।

(३)

काम भोगों का रस जानने वाले के लिए अब्रह्मचर्य से विरक्त होना और उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारण करना, बड़ा ही कठिन कार्य है।

(४)

जो मुनि संयम घातक दोषों से दूर रहते हैं, वे लोक में रहते हुए भी दुःसेव्य प्रमाद स्वरूप और भयंकर अब्रह्मचर्य का कभी सेवन नहीं करते।

(५)

यह अब्रह्मचर्य का मूल है, महादोषों का स्थान है, इसलिए निर्ग्रन्थ मुनि मैथुन संसर्ग का सर्वथा परित्याग करते हैं।

(६)

विभूसा इत्थि संसग्गो, पणीयं रसभोयणं ।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥

[दश० अ० ८ गा० ५७]

(७)

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरस्स परिमंडणं ।
बंभचेर-रओ भिक्खू सिंगारत्थं न धारए ॥

[उत्त० अ० १६ गा० ९]

(८)

न रूव-लावण्ण-विलास-हासं,
न जंपियं इंगिय-पेहियं वा ।
इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता,
दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी ॥

[उत्त० अ० ३२ गा० १४]

(९)

अदंसणं चेव अपत्थणं च,
अचिंतणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थी जणस्साऽऽरियज्झाण जुग्गं,
हियं सया बंभवए रयाणं ॥

[उत्त० अ० ३२ गा० १५]

(६)

आत्म शोधक मनुष्य के लिए शरीर का शृङ्गार स्त्रियों का संसर्ग और पौष्टिक स्वादिष्ट भोजन सब तालपुट विष के समान महान् भयंकर हैं।

(७)

ब्रह्मचर्यरत भिक्षु को शृङ्गार के लिए शरीर की शोभा और सजावट का कोई भी शृङ्गारी काम नहीं करना चाहिए।

(८)

श्रमण तपस्वी, स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, मधुर वचन, संकेत चेष्टा, हाव भाव और कटाक्ष आदि का मन में तनिक भी विचार न लाये, और न इन्हें देखने का प्रयत्न करे।

(९)

स्त्रियों को रागपूर्वक देखना, उनकी अभिलाषा करना उनका चिन्तन करना, उनका कीर्तन करना, आदि कार्य ब्रह्मचारी पुरुष को कदापि नहीं करने चाहिए। ब्रह्मचर्य-व्रत में सदा रत रहने की इच्छा रखने वाले पुरुषों के लिए यह नियम अत्यन्त हितकर है, और उत्तम ध्यान प्राप्त करने में सहायक है।

(१०)

मोक्खाभिकखिस्स उ माणवस्स,
ससार भीरुस्स ठियस्स धम्मे ।
नेयारिसं दुत्तर-मत्थि लोए,
जहित्थिओ बाल-मणोहराओ ॥

[उत्त १ अ ३२ गा १७]

(११)

मण पल्हाय-जणणी काम-राग विवड्ढणी ।
बमचेररओ भिक्खू, थीकह तु विवज्जए ॥

[उत्त अ १६ गा २]

(१२)

सम च सथव थीहिं, सकह च अभिक्खण ।
बभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥

[उत्त० अ १६ गा ३]

(१३)

पणीय भत्तपाण तु, खिप्प मयविवड्ढण ।
बभचेर रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥

[उत्त अ १६ गा ७]

(१०)

मोक्ष के अभिलाषी, संसार (चारों गतियों में इतस्ततः परिभ्रमण से) भीरु और धर्म में संलग्न समर्थ पुरुष के लिये भी इस संसार में नव-यौवना मनोरम स्त्रियों का त्याग करना जितना कठिन है उतना कठिन दूसरा कोई कार्य नहीं है।

(११)

ब्रह्मचर्य में अनुरक्त भिक्षुक को मन में वैषयिक आनन्द पैदा करने वाली तथा काम भोग की आसक्ति बढ़ाने वाली स्त्री-कथा को छोड़ देना चाहिए।

(१२)

ब्रह्मचय-रत भिक्षु को स्त्रियों के साथ बात चीत करना और उनसे बार बार परिचय प्राप्त करना सदा के लिए छोड़ देना चाहिए।

(१३)

ब्रह्मचय-रत भिक्षु को शीघ्र ही वासना वर्द्धक, पुष्टि कारक भोजन पान का सदा के लिये परित्याग कर देना चाहिए।

(१४)

रसा पगाम न निसेवियव्वा,
पाय रसा दित्तिकरा नराणं।
[उत्त अ ३२ गा १०]

(१५)

सद्दे रूवे य गन्धे य, रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए॥
[उत्त अ १६ गा १०]

(१६)

कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं,
सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जं काइयं माणसियं च किं चि,
तस्सऽन्तगं गच्छई वीयरागो।
[उत्त अ ३२ गा १९]

(१७)

देव-दाणव-गन्धव्वा, जक्ख रक्खस्स किन्नरा।
बंभयारिं नमंसन्ति, दुक्करं जे करंति ते॥
[उत्त० अ १६ गा १६]

(१४)

साधक को मधुर, तिक्त आदि रसों का सेवन बार बार नहीं करना चाहिए। क्योंकि रस इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाले होते हैं।

(१५)

ब्रह्मचारी भिक्षु को शब्द, रूप, गन्ध रस और स्पर्श-इन पाँच प्रकार के काम गुणों को सदा के लिए छोड़ देना चाहिए।

(१६)

देवताओं सहित समस्त संसार के दुःख का मूल एक-मात्र काम भोगों की वासना ही है। जो साधक इस सम्बन्ध में वीतराग हो जाता है वह शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुःखों से छूट जाता है।

(१७)

जो मनुष्य इस प्रकार दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सभी नमस्कार करते हैं।

अपरिग्गह-वय

(१)

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो ।

[दश अ ६ गा २१]

(२)

ममत्तभावं न कहिं पि कुज्जा ।

[दश चू २ गा ८]

(३)

ममत्तबंधं च महाभयावहं ।

[उत्त अ १९ गा ९८]

(४)

नेह-पासा भयंकरा ।

[उत्त अ २३ गा ४३]

(५)

तहेव हिंसं अलियं,
चोज्जं अबम्भसेवणं ।
इच्छाकामं च लोभं च,
संजओ परिवज्जए ।

[उत्त अ ३५ गा ३]

अपरिग्रह-व्रत

(१)

मूर्च्छाभाव ही परिग्रह कहा गया है।

(२)

किसी वस्तु पर ममत्व भाव
नहीं रखना चाहिए।

(३)

बन्धनों में ममता का बन्धन
बड़ा ही भयानक बन्धन है।

(४)

स्नेह का पाशा सब से
भयानक होता है।

(५)

हिंसा, असत्य चोरी, अब्रह्मचर्य,
आसक्ति, वासना और लोभ
संयत पुरुष को इन सब से
बचना चाहिए।

अराइ-भोयण वय

(१)

अत्थं गयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए॥
[दश अ ८ गा २८]

(२)

संतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे॥
[दश अ ६ गा २४]

(३)

से असणं वा, पाणं वा,
खाइमं वा साइमं वा,
नेव सयं राइं भुंजिज्जा,
नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा,
राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा॥
[दश० अ ४]

(४)

चउव्विहे वि आहारे, राईभोयण-वज्जणा।
संनिही-संचयो चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं॥
[उत्त अ १६ गा ३०]

अरात्रि भोजन-व्रत

(१)

सूर्य के उदय होने से पहले और सूर्य के अस्त हो जाने के बाद संयमी मनुष्य को भोजन पान आदि किसी भी वस्तु की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए ?

(२)

संसार में बहुत से त्रस और स्थावर प्राणी बड़े ही सूक्ष्म होते हैं—वे रात्रि में देखे नहीं जा सकते। तब रात्रि में भोजन कैसे किया जा सकता है।

(३)

साधक अन्न, पानी, खाद्य और स्वाद्य—इन चारों ही प्रकार के आहार का रात्रि में न स्वयं सेवन करे, न दूसरों को सेवन करने की प्रेरणा दे और न सेवन करने वाले का अनुमोदन ही करे।

(४)

अन्न आदि चारों ही प्रकार के आहार का रात्रि में सेवन नहीं करना चाहिए। इतना ही नहीं, दूसरे दिन के लिए भी रात्रि में खाने की सामग्री का संग्रह करना निषिद्ध है। अतः अरात्रि भोजन वास्तव में बड़ा दुष्कर है।

(५)

पाणिवह मुसावाया—ऽदत्त-मेहुण-परिग्गहा विरओ ।
राइ-भोयण-विरओ जीवो भवइ अणासवो ॥
[उत्त अ ३ गा २]



(५)

हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन—जो जीव इनसे विरत रहता है वह अनास्रव (आस्रव रहित) हो जाता है।



[७]

आय-सुत्त

[आत्म-सूत्र]

(१)

अप्पा हु खलु सययं रक्खियव्वो ।

[दश चूलिका २ गा १६]

(२)

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥

(३)

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं य, दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ ॥

[उत्त अ २० गा ३६ ३७]

(४)

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य ॥

(५)

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहिं य ॥

[उत्त अ १ गा १५ १६]

(१)

अपनी आत्मा की निरन्तर रक्षा करते रहना चाहिए।

(२)

अपनी आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी तथा कूट शाल्मली वृक्ष है। अपनी आत्मा ही स्वर्ग की कामदुघा धेनु तथा नन्दन वन है।

(३)

आत्मा ही अपने दुःखों और सुखों का कर्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र है, और बुरे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना शत्रु है।

(४)

अपने आपको दमन करना चाहिए। वास्तव में अपने आपको दमन करना बड़ा कठिन है। अपने आपको दमन करने वाला इस लोक में तथा परलोक में सुखी रहता है।

(५)

दूसरे लोग मेरा वध बन्धनादि से दमन करें, इसकी अपेक्षा तो मैं संयम और तप के द्वारा अपने आप ही अपना (आत्मा का) दमन करूँ, यह अच्छा है।

(६)

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥
[उ० अ ९ गा ३५]

(७)

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ ॥
[उत्त अ ९ गा ३४]

(८)

पंचिन्दियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं ॥
[उत्त अ ९ गा ३६]

(९)

पुरिसा !
अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ ।
एवं दुक्खा पमोक्खसि ॥
[आचा १ श्रु अ ३ उ ३]

(६)

अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करो, बाहरी शत्रुओं के साथ युद्ध करने से क्या लाभ? आत्मा के द्वारा आत्मा को जीतने वाला ही वास्तव में पूर्ण सुखी होता है।

(७)

जो वीर दुर्जय संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीतता है, यदि वह एक मात्र अपनी आत्मा को जीत ले तो यह उसकी सर्वश्रेष्ठ विजय है।

(८)

पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सब से अधिक दुर्जय अपनी आत्मा को जीतना चाहिए। एक आत्मा के जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

(९)

साधक!
तुम पहले अपनी आत्मा का ही निग्रह करो। ऐसा करने से तुम समस्त दुःखों से पूरी तरह मुक्त हो सकते हो।

(१०)

न तं अरी कंठ-छेत्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से नाहिइ मच्चु-मुहं तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो॥

[उत्त० अ० २० गा० ४८]

(११)

पुरिसा!
तुममेव तुमं मित्तं,
किं बहिया मित्त मिच्छसि।

[आचा० १ श्रु० अ० ३ उ० ३]

(१२)

नत्थि जीवस्स नासो त्ति।

[उत्त० अ० २ गा० २७]

(१३)

जे आया से विन्नाया।
जे विन्नाया से आया॥

[आचा० १ श्रु० अ० ५ उ० ५]

(१०)

सिर काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता, जितना कि दुराचार में लगा हुआ अपनी आत्मा करती है। दयाशून्य दुराचारी को अपने दुराचारों का पहले ध्यान नहीं आता, परन्तु जब वह मृत्यु के मुख में पहुँचता है, तब अपने सब दुराचारों को याद कर-कर पछताता है।

(११)

साधक!
तू स्वयं ही मरता क्यों है। दूसरे प्राणी की ओर भी क्यों देखता है?

(१२)

जीव का कभी नाश नहीं होता,
वह तो अमर तत्त्व है।

(१३)

जो उपजा है, वही बिनशता है।
जो निपजा है, वही नाशता है।



[८]

कम्म-सुत्तं

[कर्म-सूत्र]

(१-२)

नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य॥
नाम कम्मं च गोयं च, अंतरायं तहेव य।
एवमेयाइं कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ॥
[उत्त० अ० ३३ गा० २-३]

(३)

रागो य दोसो वि य कम्म-बीयं,
कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति।
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाई मरणं वयन्ति।
[उत्त० अ० ३२ गा० ७]

(४)

तेणे जहा संधि-मुहे गहीए,
सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए,
कडाण कम्माण न मुक्ख अत्थि॥
[उत्त० अ० ४ गा० ३]

(१२)

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय—इस प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म बतलाये हैं।

(३)

राग और द्वेष—दोनों कर्म के बीज (जनक) हैं—अतः कर्म का उत्पादक मोह ही माना गया है। कर्म सिद्धान्त के अनुभवी लोग कहते हैं कि संसार में जन्म मरण का मूल कारण कर्म ही है, और जन्म मरण—यही एक मात्र दुःख है।

(४)

जैसे चोर सेंध के द्वार पर पकड़ा जाकर अपने ही दुष्कर्म के कारण चीरा जाता है, वैसे ही पाप करने वाला प्राणी भी इस लोक में और परलोक में—दोनों ही जगह—भयङ्कर दुःख पाता है। क्योंकि कृत कर्मों को भोग बिना कभी छुटकारा नहीं मिल सकता।

(५)

कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ।

[उत्त अ १३ गा २३]

(६)

कम्म-संगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहु-वेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मन्ति पाणिणो ॥

[उत्त अ ३ गा ६]

(७)

कम्मुणा उवाही जायइ ।

[आचा १ श्रु अ ३ उ १]

---

(५)

कर्म कर्ता का अनुगमन करता है।

(६)

जो प्राणी काम वासनाओं से घिरे रहते हैं, वे भयङ्कर दुःख तथा वेदना भोगते हुए चिरकाल तक मनुष्येतर योनियों में भटकते रहते हैं।

(७)

सर्व प्रकार की उपाधि का
जन्म कर्म से ही होता है।





[६]

कसाय-सुत्त

[कसाय-सूत्र]

(१)

अग्गी य इइ के वुत्ता ?

[उत्त अ २३ गा ५२]

(२)

कसाया अग्गिणो वुत्ता ।

[उत्त अ २३ गा ५३]

(३)

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचन्ति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥

[दश अ ८ गा ४०]

(४)

कोहं च माणं च मायं च, लोभं च पाववड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छन्तो हिय-मप्पणो ॥

[दश० अ ८ गा ३७]

(५)

कोहो पीइं पणासेइ ।

[दश अ ८ गा ३८]

(१)

ऽम संसार म (वास्तविक)
'अग्नि कौन सी मानी गई ह ?

(२)

कषायों को ही (वस्तुत) 'आग कहा गया ह ।

(३)

अनिगृहीत क्रोध और मान तथा
प्रवर्द्धमान माया और लोभ—य चारों
ही कषाय पुनज म रूपी ससार-वृक्ष की
जड़ों को सींचत ह । अर्थात् कषायों स
ज म मरण का वृद्धि होती ह ।

(४)

जो मनुष्य अपना हित चाहता ह, वह
पाप को बढ़ाने वाले क्रोध, मान माया
और लोभ इन चार दोषों को सदा क
लिए छोड़ द ।

(५)

क्रोध प्रीति का नाश करता है ।

(६)

अहे वयन्ति कोहेणं ।

[उत्त अ ९ गा ५४]

(७)

मा य चण्डालियं कासी ।

[उत्त अ १ गा १]

(८)

रक्खिज्ज कोहं ।

[उत्त अ ४ गा १२]

(९)

उवसमेण हणे कोहं ।

[दश अ ८ गा ३९]

(१०)

कोहविजएणं जीवे खन्तिं जणयइ ।

[उत्त अ २९ सूत्र ६७]

(११)

माणो विणय-नासणो ।

[दश अ ८ गा ३८]

(१२)

माणेण अहमा गई ।

[उत्त अ ९ गा ५४]

(६)

क्रोध से मनुष्य नीचे गिरता है।

(७)

क्रोध करना—यह पापदाज कर्म है
साधक कभी पापदाज कर्म न करे।

(८)

आत्म-शोधक साधक का कर्तव्य है
कि वह क्रोध को दबाए।

(९)

शान्ति से क्रोध को मारे।

(१०)

क्रोध पर विजय पा करके मुमुक्षु आत्मा
क्षमा धर्म को प्राप्त कर लेता है।

(११)

मान विनय का नाश करता है।

(१२)

यह आत्म अभिमान से अधमगति को पहुँचता है।

(१३)

विणुपजन मारा ।

[उत्त घ ४ गा १३]

(१४)

माणा मत्वया गिरो ।

[दश० घ ८ गा ३१]

(१५)

माया विजयरा जीवे मद्दव जणयइ

[उत्त घ २९ सूत्र ६८]

(१६)

मया मित्ताणि नासेइ ।

[दश घ ८ गा ३८]

(१७)

माया गइ पडिग्घाओ ।

[उत्त घ ६ गा ५४]

(१८)

माय न सेवे ।

[उत्त घ ४ गा १२]

(१९)

माय-मज्जवभावेण ।

[दश घ ८ गा ३९]

(१३)

साधक अहंकार को दूर करे।

(१४)

साधक नम्रता से अभिमान को जीते।

(१५)

मान पर विजय पा लेने के बाद मुमुक्षु आत्मा मृदुता कोमलता को प्राप्त कर लेता है।

(१६)

माया मित्रता का नाश करती है।

(१७)

माया से सद्गति का नाश होता है।

(१८)

साधक का कर्तव्य है कि वह माया का सेवन न करे।

(१९)

साधक सरलता से माया का नाश करे

(२०)

मायाविजएणं जीवे अज्जवं जणयइ ।

[उत्त अ २९ सूत्र ६९]

(२१)

लोभो सव्वविणासणो ।

[दश० अ० ८ गा० ३८]

(२२)

लोहाओ दुहओ भयं ।

[उत्त अ ९ गा ५४]

(२३)

जहा लाहो तहा लोहो,
लाहा लोहो पवड्ढइ ।

[उत्त अ ८ गा १७]

(२४)

इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया ।

[उत्त अ ९ गा ४८]

(२५)

तण्हा हया जस्स न होइ लोहो ।
लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥

[उत्त अ ३२ गा ८]

(२०)

माया को जीत कर साधक मानव
धर्म को पा लेता है।

(२१)

लोभ सभी सद्गुणों का नाश कर देता है।

(२२)

लोभ से इस लोक तथा परलोक
में महान् भय है।

(२३)

ज्यों ज्यों लाभ होता जाता है,
त्यों त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है।

(२४)

मनुष्य की इच्छाएँ आकाश के समान
अनन्त हैं। उनकी सीमा नहीं है।

(२५)

जिसे लोभ नहीं है, उसकी तृष्णा
चली गई। जिसके पास लोभ
करने जैसा कुछ भी नहीं है,
उसका लोभ चला गया।

है

(२६)

पयहिज्ज लोहं ।

[उत्त. अ. ४ गा. १०]

(२७)

लोभं संतोसओ जिणे ।

[दश. अ. ८ गा. ३९]

(२८)

लोभविजएणं जीवे संतोसं जणयइ ।

[उत्त. अ. २९ सूत्र ७०]

(२९)

जे कोह-दंसी

से माण-दंसी,

जे माण-दंसी

से माया-दंसी,

जे माया-दंसी

से लोभ-दंसी ।

[आचा. १ श्रु. अ. ३ उ. ४]

(३०)

कसाय-पच्चक्खाणेणं जीवे वीयरागभावं जणयइ ।

[उत्त. अ. २९ सूत्र ३६]

(२६)

साधक को चाहिए कि वह लोभ को छोड़ दे।

(२७)

साधक सन्तोष से लोभ को काबू में लाये।

(२८)

लोभ पर विजयी होने के बाद मुमुक्षु जीव सन्तोष धर्म को प्राप्त कर लेता है।

(२९)

जो क्रोध करता है, वह मान भी करता है, जो मान करता है, वह माया का भी सेवन करता है, और जो माया का सेवन करता है, वह लोभ भी करता है।

(३०)

कषाय के त्याग करने से यह आत्मा वीतराग भाव को प्राप्त करता है।





[१०]

काम-विजय-सुत्तं

[कामविजयसूत्र]

(१)

जे गुणे से आवट्टे,
जे आवट्टे से गुणे।
[आचा० १ श्रु० अ० १ उ० ५]

(२)

जे गुणे से मूलट्ठाणे,
जे मूलट्ठाणे से गुणे—
इति से गुणट्ठी महया परियावेणं,
पुणो पुणो वसे पमत्ते।
[आचा० १ श्रु० अ० २ उ० १]

(३)

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे य पत्थेमाणा, अकामा जंति दोग्गइं॥
[उत्त० अ० ९ गा० ५३]

(४)

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥
[उत्त० अ० १३ गा० १६]

(१)

इन्द्रियों के विषय को ही 'संसार' कहते हैं और
जो संसार है, वह इन्द्रियों का विषय ही तो है।

(२)

जो विषय भोग हैं, वे ही संसार के मूल
कारण हैं, जो संसार के मूल कारण हैं,
वे विषय भोग ही तो हैं। जो विषय
लोलुप होता है वह विषयाधीन तथा
प्रमादी होने के कारण बार-बार दुःख
भोगता रहता है।

(३)

काम भोग शल्य रूप हैं, काम भोग विषरूप हैं,
काम भोग विषधर सर्प के समान हैं। काम
भोगों की लालसा रखने वाले प्राणी उन्हें प्राप्त
किये बिना ही अतृप्त दशा में एक दिन दुर्गति
को प्राप्त हो जाते हैं।

(४)

गीत सब विलाप रूप हैं, नाट्य सब विडम्बना
रूप हैं। आभरण सब भार रूप हैं। अधिक
क्या, संसार के जो भी काम भोग हैं वे सब
दुःख देने वाले हैं।

(५)

खणमेत्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगामदुक्खा, अणिगाम सोक्खा ।
संसार मोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥
[उत्त अ १४ गा १३]

(६)

दुप्परिच्चया इमे कामा ।
[उत्त अ ८ गा ६]

(७)

भोगा इमे संगकरा भवंति ।
[उत्त अ १३ गा २७]

(८)

कामाणुगिद्धि-प्पभवं खु दुक्खं ।
[उत्त अ ३२ गा १९]

(९)

जहा किंपागफलाण, परिणामो न सुन्दरो ।
तहा भुत्ताण भोगाण, परिणामो न सुन्दरो ॥
[उत्त अ १९ गा १७]

(५)

काम भोग क्षण मात्र सुख देने वाले हैं और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं। उनमें सुख बहुत थोड़ा है। अत्यधिक दुःख ही दुःख है। मोक्ष-सुख के ये भयङ्कर शत्रु हैं, अनर्थों की खान हैं।

(६)

सचमुच काम भोगों का
छोड़ना बड़ा कठीन है।

(७)

ये काम भोग ही आसक्ति
के बढाने वाले होते हैं।

(८)

काम भोगों में आसक्ति रखने
से ही दुःख पैदा होता है।

(९)

जैसे किंपाक फलों को भोगने का परिणाम अच्छा नहीं होता उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता।

(१०)

पासह,
एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे,
एत्थ फासे पुणो पुणो ।
[आचा १ श्रु अ ५ उ १

(११)

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥
[उत्त अ २५ गाथा

(१२)

तम्हा संग ति पासह,
गंथेहिं गढिया नरा विसन्ना कामकन्ता
तम्हा लूहाओ नो परिवित्तसेज्जा
[आचा १ श्रु अ ३ उ

(१३)

कामे कमाही कमियं खु दुक्खं ।

(१०)

देखो,
जो लोग रूप आदि इन्द्रिय विषयों
में आसक्त हैं वे बार-बार नरकादि
दुःखों को भोगते रहते हैं।

(११)

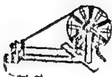
जो मनुष्य भोगी है—भोगासक्त है, वही कर्म मल से लिप्त होता है, अभोगी लिप्त नहीं होता। भोगी संसार में परिभ्रमण करता रहता है और अभोगी संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है।

(१२)

साधक!
संसार के विषयों की आसक्ति छोड़ दे। धन सम्पत्ति में मोहित प्राणी अनेक कामनाओं से घिर कर दुःखी होते रहते हैं, इसलिए साधक को संयम से नहीं डिगना चाहिए।

(१३)

कामनाओं को त्याग दो, समझ लो कि तुम्हारे सब दुःखों का अन्त आ गया है।



[११]

अप्पमाय-सुत्तं

[अप्रमाद-सूत्र]

(१)

समय गोयम ! मा पमायए ।

[उत्त अ १० गा १]

(२)

उट्ठिए नो पमायए ।

[आचा १ श्रु अ २ उ १]

(३)

सव्वओ पमत्तस्स भयं ।

[आचा० १ श्रु अ ३ उ १]

(४)

असंखयं जीविय मा पमायए ।

[उत्त अ ४ गा १]

(५)

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते ।

[उत्त अ ४ गा ५]

(६)

घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं,

भारंड पक्खीव चरेऽपमत्ते ।

[उत्त अ ४ गा ६]

(१)

गौतम !
क्षण मात्र प्रमाद मत कर ।

(२)

उठ, प्रमाद छोड़ दे ।

(३)

प्रमादी मनुष्य को चारों ओर से
भय बना रहता है ।

(४)

जीवन असंस्कृत है, अर्थात् एक बार
जीवन टूट जाने पर फिर नहीं जुड़ता,
अतः क्षण भर भी प्रमाद न करो ।

(५)

प्रमत्त मनुष्य धन के द्वारा
अपनी रक्षा नहीं कर सकता ।

(६)

'काल निर्दय है और शरीर निर्बल'
यह जानकर भारण्ड पक्षी की तरह
हमेशा अप्रमत्त भाव से विचरना चाहिए ।

(७)

धीरे मुहुत्तमवि नो पमायए,
वओ अच्चेइ—
जोवण च,
जीविय ॥

[आचा १ श्रु अ २ उ १]



([illegible])

धीर पुरुष को क्षण मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । उसका अमूल्य आयु, यौवन और जीवन क्षण क्षण में बीत रहा है ।





[१२]

समण-सुत्त

[श्रमणसूत्र]

(१)

सो समणो जइ सुमणो,
भावेण जइ ण होइ पावमणो ।
सयणे य जणे य समो,
समो य माणावमाणेसु ॥

(२)

जह मम न पियं दुक्खं,
जाणिय एमेव सव्व-जीवाणं ।
न हणइ न हणावेइ य,
समण-मइ तेण सो समणो ॥

(३)

णत्थि य से कोइ वेसो,
पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु ।
एएण होइ समणो,
एसो अन्नो वि पज्जाओ ॥ [अनुयोग द्वार सूत्र]

(४)

गुणेहिं साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहू गुण मुञ्चऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो राग-दोसेहिं समो स पुज्जो ॥

(१)

जिसका हृदय सदा प्रफुल्लित है, जो कभी भी पाप चिन्ता नहीं करता, जो स्वजन और परजन तथा मान और अपमान बुद्धि का सन्तुलन रखता है—
वह श्रमण है।

(२)

जिस प्रकार मुझे दुःख अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार सभी जीवों को दुःख अच्छा नहीं लगता। यह समझ कर जो न स्वयं हिंसा करता है, और न करवाता है, अर्थात् सभी प्राणियों पर समबुद्धि रखता है, वही श्रमण है।

(३)

'श्रमण' की एक व्याख्या यह भी है कि "जो किसी से द्वेष नहीं करता, जिसे सब जीव समान भाव से प्रिय हैं—वह समन है।"

(४)

गुणों से साधु होता है और अगुणों से असाधु, अतः हे मुमुक्षु! सद्गुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़। जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वह पूज्य है।

(५)

तेसिं गुरूणं गुण-सायराणं,
सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं ।
चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो,
चउक्कसायावगए स पुज्जो ॥
[दश० अ० ६ उ० ३ गा० ११]

(६)

नाणा-दंसण-सम्पन्नं, संजमे य तवे रयं ।
एवं गुण-समाउत्तं, संजय साहुमालवे ।
[दश० अ० ७ गा०]

(७)

जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठी कु
साहीणे चयइ भोए से हु चाइ त्ति वुच्च

(८)

वत्थ गंध-मलंकारं, इत्थिओ सयणाणि
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्च
[दश० अ० २ गा०]

(५)

जो बुद्धिमान् मुनि सद्गुण सिन्धु गुरुजनों के सुभाषितों को सुनकर तदनुसार पाँच महाव्रतों में रत होता है, तीन गुप्तियों को धारण करता है, और चार कषायों से दूर रहता है, वही पूज्य है।

(६)

सच्चा साधु उसी को कहना चाहिए जो ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न हो, संयम और तपश्चरण में लीन हो और सदा सद्गुणों को धारण करने वाला हो।'

(७)

जो मनुष्य सुन्दर और प्रिय भोगों को पाकर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग कर देता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है।

(८)

जो मनुष्य किसी परतन्त्रता के कारण वस्त्र, गंध, अलङ्कार स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता है।

(९)

कहं नु कुज्जा सामण्णं,
जो कामे न निवारए।
पए पए विसीयन्तो,
संकप्पस्स वसं गओ॥

[दश० अ० २ गा० १]

(१०)

जे केइ पव्वइए,
निद्दासीले पगामसो।
भोच्चा पिच्चा सुहं सुवइ,
पावसमणि त्ति वुच्चइ॥

[उत्त० अ० १ गा० ३]

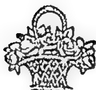
(९)

जो वासनाओं को नहीं रोक सकता, वह श्रामण्य-संयम की पालना कैसे कर सकता है ? वह तो वासना के वशीभूत होकर पद पद पर विषाद को पाता रहता है।

(१०)

जो भिक्षु प्रव्रज्या लेकर भी अत्यन्त निद्राशील हो जाता है, खा पीकर मजे से सो जाया करता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।





[१३]

असरण-सुत्त

[अशरण-सूत्र]

(१)

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य,
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जन्तुणो ॥

[उत्त अ १९ गा १५]

(२)

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं ।
असासयावासमिणं, दुक्ख-केसाण भायणं ॥

[उत्त अ १९ गा १२]

(३)

वित्तं पसवो य नाइओ, तं बाले सरणं ति मन्नई ।
एए मम तेसु वि अहं, नो ताणं सरणं ति विज्जई ॥

[सूत्र श्रु १ अ २ उ ३ गा १६]

(४)

न चित्ता तायए भासा,
कुओ विज्जाणुसासणं ।
विसन्ना पावकम्मेहिं,
बाला पंडियमाणिणो ॥

[उत्त अ ६ गा ११]

(१)

जन्म का दुःख है, जरा का दुःख है, रोग और मरण का भी दुःख है। अहो! सारा संसार दुःखमय ही है। यहाँ प्रत्येक प्राणी जब देखो तब क्लेश ही पाता रहता है।

(२)

यह शरीर अनित्य है अशुचि है, अशुचि से उत्पन्न हुआ है, दुःख और क्लेशों का धाम है। जीवात्मा का इसमें कुछ ही क्षणों के लिए निवास है, आखिर एक दिन तो अचानक छोड़ कर चले ही जाना है।

(३)

धन पशु और जाति वालों को मूर्ख मनुष्य अपना शरण मानता है और समझता है कि ये मेरे हैं और 'मैं उनका हूँ'। परन्तु इनमें से कोई भी आपत्तिकाल में त्राण तथा शरण देने वाला नहीं।

(४)

चित्र विचित्र भाषा आपत्तिकाल में त्राण करने वाली नहीं, इसी प्रकार मंत्रात्मक भाषा का अनुशासन भी त्राण करने वाला कैसे हो? अतः भाषा और मांत्रिक विद्या से त्राण पाने की आशा वाले पण्डितंमन्य मूढ़ जन पाप कर्मों में मग्न हो रहे हैं।

(५)

दाराणि सुया चेव, मित्ता य तह बन्धवा ।
जीवन्तमणुजीवन्ति, मय नाणुव्वयंति य ॥
[उत्त० अ० १८ गा० १४]

(६)

जहेह सीहो व मियं गहाय,
मच्चू नर नेइ हु अन्तकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया,
कालम्मि तम्मंसहरा भवंति ॥
[उत्त० अ० १३ गा० २२]

(७)

आरम्भज दुक्खमिणं ति णच्चा,
माई पमाई पुण एइ गब्भं ।
उवेहमाणो सद्द-रूवेसु उज्जू
माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ ॥
[आचा० श्रु० १ अ० ३ उ० १]

(५)

स्त्री, पुत्र, मित्र और बन्धुजन सब कोई जीते जी के साथी हैं, मरने पर कोई भी पीछे नहीं आता।

(६)

जिस प्रकार सिंह, मृग को पकड़ कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्त समय में मृत्यु भी मनुष्य को दबोच लेती है। उस समय माता, पिता भाई आदि कोई भी उसके दुःख में भागीदार नहीं होते—परलोक में उसके साथ नहीं जाते।

(७)

संसार में दुःख हिंसा से उत्पन्न होता है, मायावी तथा प्रमादी को बार बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। वह जन्म-मरण के चक्कर से नहीं छूटता। यह जानकर कषाय रहित सरल स्वभाव वाला विवेकी पुरुष मृत्यु से डर कर शब्द, रूप आदि इन्द्रिय-विषयों में उपेक्षा रखता है और धीरे धीरे वह मृत्यु से छूट जाता है।



[१४]

खामणा-सुत्तं

[क्षमापना-सूत्र]

(१)

खामेमि सव्व-जीवे,
सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्व-भूएसु,
वेरं मज्झ न केणइ॥

[प्रतिक्रमण सूत्र]

(२)

खमियव्वं, खामियव्वं,
उवसमियव्वं, उवसामियव्वं,
सम्मुइ सपुच्छणा-बहुलेण होयव्वं।
जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा।
जो न उवसमइ, तस्स नत्थि आराहणा।
तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं।
से किमाहु, भंते?
"उवसमसारं खु सामण्णं।"

[कल्प-सूत्र]



(१)

अपनी ओर से मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ और वे सब जीव भी मुझे क्षमा करें। मेरी सब जीवों के साथ पूर्ण मैत्री है किसी के साथ वैर विरोध नहीं है।

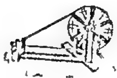
(२)

दूसरे की भूलों को अपनी ओर से क्षमा कर दे, अपनी भूलों के लिए दूसरे से क्षमा मांग ले। आपसी द्वेष को दूर करके स्वयं शान्त हो जा, और दूसरे से शान्त होने की प्रार्थना कर। स्वयं दूसरे के पास जाकर उसके कुशल समाचार पूछ।

जो झगड़े या झगड़े के कारणों को मिटाता है, वह भगवान् की आज्ञा का आराधक है। जो उन्हें नहीं मिटाता वह आराधक नहीं है। इस लिए अपनी ओर से ही झगड़ा शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

भगवन्! ऐसा क्यों?

"उपशम—शान्ति ही श्रमण धर्म का सार है।"



[१५]

विविह-सुत्तं

[विविधसूत्र]

(१)

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥

(२)

कम्माणं तु पहाणाए आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं ॥

(३)

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जन्ति, तवं खन्तिमहिंसयं ॥

(४)

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम दुल्लहा ।
सोच्चा नेआउयं मग्गं, बहवे परिभस्सई ॥

(५)

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि नो य णं पडिवज्जए ॥

(१)

संसार में जीवों को इन चार श्रेष्ठ अंगों (जीवन विकास के साधनों) का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है— मनुष्यत्व, धर्म श्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ।

(२)

संसार में परिभ्रमण करते करते जब कभी बहुत काल में पाप कर्मों का वेग क्षीण हो जाता है और उसके फल स्वरूप अन्तरात्मा क्रमशः शुद्धि को प्राप्त हो जाता है तब कहीं मनुष्य जन्म मिलता है।

(३)

मनुष्य जन्म की प्राप्ति हो जाने पर भी धर्म के श्रवण का अवसर मिलना बड़ा कठिन होता है, जिसे सुनकर मनुष्य तप, क्षमा और अहिंसा को स्वीकार करता है।

(४)

कभी कभी धर्म श्रवण का अवसर मिल जाता है, परन्तु उस पर श्रद्धा का आना तो अत्यन्त ही दुर्लभ होता है। कारण कि बहुत से लोग न्याय मार्ग को—सत्य सिद्धान्त को सुनकर भी उससे दूर ही रह सकते हैं—उन पर विश्वास नहीं करते।

(५)

धर्म का श्रवण और उस पर श्रद्धा—दोनों प्राप्त कर लेने पर भी उनके अनुसार पुरुषार्थ करना तो और भी कठिन है। क्योंकि बहुत से लोग ऐसे हैं, जो धर्म पर दृढ़ विश्वास रखते हुए भी उसे आचरण में नहीं लाते।

(६)

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्म सोच्च सद्दहे।
तवस्सी वीरिय लद्धु, सवुडे निद्धुणे रय॥
[उत्त अ ३ गा १०८३१०।११]

× × × × ×

(७)

पढम नाण तओ दया, एव चिट्ठइ सव्व-सजए।
अन्नाणी किं काही? किं वा नाही स सेय-पावग॥
[दश अ ४ गा १०]

(८)

"बन्ध प्पमोक्खो तुज्झत्थमेव।"
[आचा श्रु १ अ २ उ १]

(९)

जय चरे जय चिट्ठे, जय-मासे जय सए।
जय भुञ्जन्तो भासन्तो पाव-कम्म न बन्धइ॥

(१०)

सव्व भूय प्पभूयस्स, सम्म भूयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दन्तस्स, पावकम्म न बन्धइ॥
[दश अ ४ गा ८९]

(६)

रन्तु जो तपस्वी मनुष्यत्व को पाकर धर्म का श्रवण कर स पर श्रद्धा लाता है और तदनुसार पुरुषार्थ कर आस्रव हित हो जाता है, वह अन्तरात्मा पर से कर्म-रज को झटक देता है।

× × × ×

(७)

थम ज्ञान है, पीछे दया'। इसी क्रम पर समग्र त्यागी वर्ग नी संयम यात्रा के लिए ठहरा हुआ है। भला, अज्ञानी ग्य क्या करेगा ? श्रेयस् और अश्रयस् को या पुण्य एवं पाप को वह कैसे जान सकेगा ?

(८)

बन्धन और मुक्ति तुम्हारी आत्मा में ही है।

(९)

क से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे, विवेक से , विवेक से भोजन करे और विवेक से ही बोले तो पाप कर्म नहीं बंधता।

(१०)

व जीवों को अपने ही समान समझता है, अपने पराये ो समान दृष्टि से देखता है, जिसने सब आस्रवों का । कर लिया है, जो चंचल इन्द्रियों का दमन कर चुका है, उसे पाप-कर्म का बंध नहीं होता।

(११)

छद निरोहेण उवेइ मोक्खं,
आसे जहा सिक्खियवम्मधारी ।
पुव्वाइ वासाइ चरेऽपमत्तो,
तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ॥

[उत्त० अ ४ गा ८]

(१२)

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अन्नाण-मोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंत-सोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥

(१३)

तस्सेस मग्गो गुरु-विद्ध-सेवा,
विवज्जणा बाल-जणस्स दूरा ।
सज्झाय एगंत निसेवणा य,
सुत्तत्थ चिन्तणया धिई य ॥

× × × × ×

(१४)

लाभो त्ति न मज्जेज्जा,
अलाभो त्ति न सोयए ।

[आचा० श्रु १ अ २ उ ५]

(११)

जिस प्रकार शिक्षित (सधा हुआ) तथा कवचधारी योद्धा युद्ध में विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार विवेकी मुमुक्षु भी जीवन संग्राम में विजयी होकर मोक्ष प्राप्त करता है। जो मुनि दीर्घकाल तक अप्रमत्त रूप से संयम धर्म का आचरण करता है, वह शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष पद पाता है।

(१२)

सब प्रकार के ज्ञान को निर्मल करने से, अज्ञान और मोह के त्याग से तथा राग और द्वेष का क्षय करने से एकान्त सुख स्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है।

(१३)

सद्गुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त सत्-शास्त्रों का अभ्यास करना और उनके गम्भीर अर्थ का चिन्तन करना, और चित्त में एतिरूप अटल शान्ति प्राप्त करना, यह निश्रेयस् (मोक्ष) का मार्ग है।

× × × × ×

(१४)

साधक आहार आदि के प्राप्त होने पर अभिमान न करे और न मिलने पर शोक न करे।

(१५)

आहारमिच्छे मियमेसणिज्ज,
सहायमिच्छे निउणत्थ-बुद्धि ।
निकेयमिच्छेज्ज विवेग जोग्ग,
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥ [उत्त अ ३२

(१६)

न वा लभेज्जा निउण सहाय,
गुणाहिय वा गुणओ सम वा ।
एक्को वि पावाइ विवज्जयन्तो,
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ [उत्त अ ३२

(१७)

लज्जा - दया - सजम - बम्भचेर,
कल्लाणभागिस्स विसोहि-ठाण । [दश अ ६

(१८)

सोही उज्जुय भूयस्स । [उत्त अ ३ गा

(१९)

एगओ विरइ कुज्जा एगओ य पवत्तण ।
असजमे नियत्ति च, सजमे य पवत्तण ।
[उत्त अ ३१ गा २

(१५)

समाधि की इच्छा रखने वाला तपस्वी श्रमण परिमित तथा शुद्ध आहार ग्रहण कर, निपुण बुद्धि वाले तत्त्व ज्ञानी साथी की खोज करे, और ध्यान करने योग्य एकान्त स्थान में निवास करे।

(१६)

यदि अपने से गुणों में अधिक या समान गुण वाला साथी न मिले तो पाप कर्मों का परित्याग कर तथा काम भोगों में सर्वथा अनासक्त रहकर अकेला ही विचरे। परन्तु दुराचारी का कभी भूल कर भी संग न करे।

(१७)

लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य—ये चारों मुमुक्षु साधक के लिए विशुद्धि के स्थान हैं।

(१८)

सरल आत्मा की ही शुद्धि होती है।

(१९)

एक ओर से निवृत्ति करनी चाहिए और दूसरी ओर से प्रवृत्ति असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करना ही सम्यक् चारित्र है।

× × × × ×

(२०)

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
नाणेण मुणी होई तवेण होइ तावसो ॥

(२१)

समयाए समणो हो, बंभचेरेण बंभणो ।
मोणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥

(२२)

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥
[उत्त अ २५ गा ३१ ३२ ३३]

(२३)

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो,
न दीसइ जाइविसेस कोई ।
[उत्त अ १२ गा ३७]

× × × ×

(२४)

नत्थि कालस्स णागमो ।
[आचा श्रु १ अ २ उ ३]

(२०)

सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता, 'ओम्' का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता और कुशा के बने वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी नहीं हो सकता ।

(२१)

समता से श्रमण है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है, और तप से तपस्वी बन जाता है।

(२२)

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और अपने कृत कर्मों से ही शूद्र होता है

(२३)

तपस्या का प्रभाव तो प्रत्यक्ष दिखलाई देता है, मगर जाति की कोई विशेषता नजर नहीं आती ।

× × × × ×

(२४)

मृत्यु नहीं टल सकती।"

(२५)

जीविय नाभिकंखेज्जा, मरणं नो वि पत्थए ।
दुहओ वि न सज्जेज्जा, जीविए मरणे तहा ॥

[आचा श्रु १ अ ८ उ ८]

(२६)

मा सद्दे य आलस्से, अप्प पि अमाहे चरे ।
मन्द हास परिच्चाग, अलीण-गुत्तो परिव्वए ॥

[आचा श्रु १ अ २ उ १]

(२७)

"धुणे सरीरं,
कसेहि अप्पाणं,
जरेहि अप्पाणं ॥"

[आचा० श्रु १ अ ४ उ ३]

× × × ×

(२८)

सत्ति मेत्तिय पडिए ।

[दस० अ ४ गा १]

(२४)

साधक न तो जीवित रहने की इच्छा [illegible]
और न मरने की ही इच्छा करे। [illegible]
मरण में से किसी में भी [illegible]

(२५)

साधक !
क्या अरति ? और [illegible]
भावों से निर्लिप्त रह कर [illegible]
हास्य, कुतूहल आदि को [illegible]
वश में रखो और दोनों [illegible]
कर संयम का पालन [illegible]

(२६)

साधक !
उग्र तपश्चरण के [illegible]
कर डाल और [illegible]
और [illegible]

× × × ×

(२७)

विवेकवान् [illegible]

(२९)

वुड्ढेहिं सह संसग्गं,
हासं कीडं च वज्जए ।

[उत्त० अ० १ गा० ९]

(३०)

वसे गुरुकुले निच्चं,

[उत्त अ ११ गा १४]

(३१)

निद्दिमस न माइज्जा ।

[दस अ ८ गा ४०]

(३२)

मग्गा मोम निरज्जए ।

[दस अ ८ गा ४०]

(३३)

नो निण्हवेज्ज वीरियं ।

[आचा श्रु १ अ ५ उ ३]

(३४)

धम्मे धान समायरे ।

[उत्त अ १ गा ३१]

(१९)

क्षुद्र लोगों के संसर्ग से बचो, उनके साथ
हँसी और विनोद मत करो।

(२०)

निरन्तर गुरुकुल में निवास करना चाहिए।

(२१)

पीठ का मांस अर्थात् चुगली न खाओ।

(२२)

झूठ-कपट से दूर रहो।

(२३)

अपने सामर्थ्य का अपलाप मत करो।

(२४)

जो कार्य जिस समय करना है
उसे उसी समय पर करो।

(३५)

ज सेय त समायरे ।

[दश अ ४ गा ११]

(३६)

जहा अतो तहा बाहिं,
जहा बाहिं तहा अतो ।

[आचा सु १ अ २ उ २]

(३७)

पमत्ते बहिया पास,
अपमत्ते परिव्वए ।

[आचा सु १ अ २ उ १]

(३८)

उद्देसो पासगस्स नत्थि ।

[आचा १ सु अ २ उ ६]

(३९)

जहा पुण्णस्स कत्थइ,
तहा तुच्छस्स कत्थइ,
जहा तुच्छस्स कत्थइ ।—

—

(३५)

जो श्रेयस्कर हो, उसी का आचरण करो।

(३६)

जैसे भीतर वैसे बाहर, और जैसे बाहर वैसे भीतर। अर्थात् अपना विचार, उच्चार और आचार एकरूप रखो।

(३७)

प्रमाद करने वाला धर्म से पराङ्मुख होता है, इसलिए साधक अप्रमत्त होकर विचरे।

(३८)

तत्वदर्शी के लिए किसी उपदेश की आवश्यकता नहीं है।

(३९)

यह उपदेश जिस प्रकार धनवान् के लिए है, उसी प्रकार गरीब के लिए भी है, और जिस प्रकार रंक के लिए है उसी प्रकार राजा के लिए भी है।

समाप्त